P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 **SHRINKHALA :** VOL-II * ISSUE-VIIIApril-2015
E: ISSN NO.: 2349-980X

प्राचीन भारत में राष्ट्र की अवधारणा

रजनी मीणा
व्याख्याता,
इतिहास विभाग,
राजकीय महाविद्यालय राजगढ़,
अलवर

सारांश

प्राचीन भारतीय सन्दर्भ में राष्ट्र एक भौगोलिक सांस्कृतिक अवधारणा रही है। ऋग्वेद में राष्ट्र शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख एक मिश्रित विशाल भू–क्षेत्र के अर्थ में हुआ है। ब्रह्मवर्त, बह्मर्शि देश, मध्यदेश, आर्यवर्त एवं भारतवर्ष आदि नामों से आर्य क्षेत्र का क्रमिक भू–सांस्कृतिक विस्तारीकरण हुआ है। मान्यतानुसार पौरववंशी चक्रवर्ती सम्राट भरत के नाम पर राष्ट्र का नाम भारतवर्ष पडा।

वेद, पुराण, महाभारत, रामायण, अष्टाध्यायी, जातक–साहित्य, रघुवंश, मेघदूत एवं अन्य प्राचीन भारतीय साहित्य में भारत भूमि के जनपदों, राज्यों, नगरों, नदियों, पर्वतों, जातियों, निवासियों आदि का विस्तार से उल्लेख हुआ है। वायु पुराण का यह उल्लेख कि हिमालय एवं समुद्र के मध्य अवस्थित भूमि भारतवर्ष है और उसमें निवास करने वाली प्रजा भारती है, भारतीय राष्ट्रीयता का प्राचीन श्रेष्ठ उदाहरण है। भारतवासी प्राचीन समय से ही भारतोय उपमहाद्वीप के भूगोल से भली–भांति परिचित थे और सम्पूर्ण भारत भूमि के प्रति उनकी गहरी श्रद्धा थी। भारत राष्ट्र के प्रति भावनात्मक एकता एवं भारतवासियों में सहअस्तित्व भाव को बनाये रखने में वदिक संस्कृति, द्रविडोय संस्कृतियों से आर्य संस्कृति का सम्पर्क एवं समन्वय संस्कृत भाषा एवं साहित्य की व्यापकता, ब्राह्मी लिपि व पाली भाषा का प्रसार सनातन हिन्दू धर्म एवं उसके अनुष्ठान, हिन्दू जीवन पद्धति, दर्शन एवं आध्यात्मिकता, चतुर्दिक तीर्थो की स्थापना तीर्थ यात्रा एवं भक्ति परम्परा हिन्दू–बौद्ध–जैन स्थापत्य एवं देव प्रतिमा कला की समरूपता आदि तत्वों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया।

भारत राष्ट्र की भू–सांस्कृतिक एकता एवं पहचान को प्राचीन काल में उसके अनेक यशस्वी चक्रवर्ती सम्राटों के अखिल भारतीय राज्यों के निमार्ण, सुसंगठित प्रशासनिक व्यवस्था एवं राष्ट्रीय एकता के लिए किये गये अनेक धार्मिक–सांस्कृतिक कार्यो के कारण और भी अधिक बल प्राप्त हुआ।

भारत में साम्राज्य की अवधारणा वैदिक काल में अस्तित्व में आ चुकी थी। ऐतरेय ब्राह्मण में समुदपर्यन्त पृथ्वी के शासकों को एकराट् कहा गया है। कौटिल्य ने चक्रवर्ती सम्राट का शासन क्षेत्र हिमालय से लेकर आसमुद्र सम्पूर्ण भारत भूमि को माना है। चन्द्रगुप्तमौर्य प्रथम ऐतिहासिक चक्रवर्ती शासक था

जिसने एक सुसंगठित केन्द्रीकृत शासन व्यवस्था द्वारा भारत के राष्ट्र राज्य की स्थापना की। अशोक महान ने पालीभाषा, ब्राह्मीलिपि, धम्म, प्रशासनिक सुधारों एवं प्रजाकल्याणकारी कार्यो के माध्यम से अपने साम्राज्य के नागरिकों में एकता एवं समानता की भावना को सुदृढ़ एवं विस्तृत किया। साम्राज्यीय गुप्त सम्राटों के काल–साहित्य–विज्ञान–दर्शन–धर्म के क्षेत्र में हुए अभूतपूर्व विकास ने इस देश को न केवल सांस्कृतिक दृष्टि किया अपितु उनमें भारत राष्ट्र के प्रति गौरव भाव में वृद्धि की।

गुप्तोत्तरकालीन भारत में उत्तर एवं दक्षिण भारत में अनके प्रादेशिक राज्यों का उदय हुआ लेकिन जहां उत्तर भारतीय शासकों की महत्वाकांक्षा समुद्रयपयन्त राज्य विस्तार की होतो थी वही दक्षिण भारतीय शासक हिमालय एवं गंगानदी तक अपने सैन्य अभियान कर अपने राज्य को अखिल भारतीय स्वरूप देने की अभिलाषा रखते थे। कदाचित उन शासकों के अवचेतन में प्राचीन चक्रवर्ती सम्राटों के आदर्श विद्यमान थे।

निष्कर्षतः आधुनिक राजनीतिक संदर्भ में एक राष्ट्र राज्य के रूप में भारत का अस्तित्व भले ही बीसवीं शाताब्दी की प्रघटना हो लेकिन एक भू–सांस्कृतिक राष्ट्र के रूप में इसकी पहचान भारतीय जनमानस में प्राचीन काल से ही निरन्तर विद्यमान रही है।

मुख्य शब्द : प्राचीन भारत, संस्कृति, सभ्यता।

प्रस्तावना

प्राचीन भारत के संदर्भ में राष्ट्र एक भू–सांस्कृतिक अवधारणा थी पश्चिमी साम्राज्यवादी इतिहासकारों का यह कथन की भारत राष्ट्र केवल अंग्रेजी

शासन के अन्तर्गत ही एक सत्र में बंध सका, इससे पूर्व नहीं–ऐतिहासिक दृष्टि से पूर्णतः सत्य नहीं हैं। राष्ट्र की अवधारणा का प्राचीनतम उल्लेख ऋग्वेद मे हुआ है।[1] यहां देश या राज्य के लिए राष्ट्र शब्द प्रयुक्त हुआ है। ऋग्वेद के दशम मण्डल में राजा से राष्ट्र की रक्षा करने को कहा गया है।[2] इससे स्पष्ट होता हैं कि ऋग्वेद काल के अन्त में राष्ट्र के अंग के रूप में क्षेत्र की परिकल्पना की जाने लगी थी। उत्तरवैदिक काल में प्रादेशिक तत्व का जोर क्रमशः बढता गया। अथर्ववद के निर्वाचन गान में यह अभिलाषा व्यक्त की गई है कि राष्ट्र या प्रदेश राजा के अधिकार मे रहे और वरूण, बृहस्पति, इन्द्र, अग्नि देवता उसे दृढ़ता प्रदान करें।[3] अब राजा के प्रभुत्व वाले भू–भाग का निरन्तर विस्तार होने लगा था, फलतः वे राजधिराज, सम्राट एकराट जैसी विशाल उपाधियां धारण करने लगे। ऐतरेय ब्राहाण के अनुसार समुद्रपर्यन्त पृथ्वी का शासक, एकराट होता है।[4] शतपथ ब्राहाण में भी राजा को राष्ट्रभृत या राज्य का भर्ता (पालनकर्ता) कहा गया है।[5] राजसूय तथा अश्वमेघ जैसे विशाल यज्ञों का अनुष्ठान कर सम्राट अपनी शक्ति प्रदर्शित करते थे।

हमारे देश के नाम भारत अथवा भारतवर्ष की व्याख्याएं प्राचीन भारतीय साहित्य में उपलब्ध हैं। इनमें एक व्याख्या प्रकृत्या सांस्कृतिक है। महाभारत क वनपर्व में कहा गया है 'भरत्येश प्रजाः सर्वस्ततो भरत उच्यते'[6] अर्थात अग्नि भरत है क्योंकि वह प्रजाओ को भरता है, वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार 'देश में जहां–जहां अग्नि फैलती है, प्रजाएं उसकी अनुगामी होकर उस पदेश में भर जाती हैं। आद्य भूसन्निवेश के समय देश विस्तार की यही राष्ट्रीय युक्ति थी..... इस प्रकार समग्र भूमि भरत– अग्नि का व्यापक क्षेत्र बन गयी और यही भरत क्षेत्र भारतवर्ष कहलाया।'[7]

दूसरी लोकप्रिय व्युत्पति राजनीतिक है। पौरव वर्ष के प्रसिद्ध सम्राट दौःषन्ति भरत ने देश के बिखरे हुए आर्य राज्यों को जीतकर चक्रवती साम्राज्य स्थापित किया था। उसके इस साम्राज्य को उसके उतराधिकारियों ने चिरकाल तक स्थायी बनाये रखा इसलिए वे स्वयं और उनके शासन के अन्तर्गत रहने के कारण यह देश भारत नाम से विख्यात हुआ। भरत के शासन मे इस देश को राजनीतिक एकता प्राप्त हुई। परवर्ती काल मे भरत नाम को और अधिक व्यापक आधार देने का प्रयास किया गया। मत्स्य पुराण मे मनु को भरत कहा गया है क्योंकि उन्होने ही सबसे पहले धर्म और न्याय की मर्यादा बांधकर प्रजाओं के भरण पोषण की परम्परा प्रचलित की थी। इस व्यवस्था के अनुसार जिस प्रदेश में मनु की सन्तति ने निवास किया उसका नाम भारतवर्ष पडा।[8]

भारतवर्ष प्राचीन काल से ही एक विशिष्ट भौगोलिक इकाई के रूप में प्राचीन भारतीय साहित्य में वणित होता रहा है। राष्ट्र के आवश्यक तत्व के रूप में एक विशिष्ट भागोलिक पहचान एवं भू–भाग की समरूपता यहां विद्यमान रही है, वर्तमान में भौगोलिक एवं भूगर्भीय दृष्टि से भारतवर्ष एशिया महाद्वीप के अर्न्तगत हिमालय और हिन्दूकुश के दक्षिण, हेलमन्द के पूर्व और ब्रह्मपुत्र के पूर्वी छोर के पश्चिम एव दक्षिण में समुद्र सें परिवृत एक विशाल उपमहाद्वीपीय भूखण्ड है। विष्णु पुराण में इसका स्पष्ट उल्लेख है–

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रैश्चैव दक्षिणम्।
वस तदभारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः।।
2/3/1

प्राचीन काल से ही भारत के लोगों को एक भौगोलिक इकाई के रूप में अपनी मातृभूमि का पूर्ण रूपेण ज्ञान था और इसके प्रति उनके हृदय मे श्रद्धा एवं प्रेम निहित था। अर्थवेवद के पृथ्वी सूक्त में 'मातृभूमि : पुत्रोऽहम् पृथिव्याः' कहकर राष्ट्रप्रेम के भारतीय दृष्टिकोण को व्यक्त किया गया है। भारत में अतिप्राचीन काल से भारती प्रजा की भौगोलिक और सांस्कृतिक एकता को निर्विवादरूपेण स्वीकृत किया गया। प्राचीन काल से ही यह देश भारतवर्ष के नाम से विख्यात था और यहां के निवासी भारती सन्तति कहे जाते थे। भारतवासियों ने भारत को अपनी मातृभूमि माना है और यहां के नदियों, पर्वतों और नगरों आदि की देवियों और देवताओं के रूप मे उपासना की। उनकी इस भावना के क्रमिक विकास का इतिहास प्राचीन साहित्य में सुरक्षित ह। मनुस्मृति में आर्य क्षेत्र के क्रमिक विस्तार की स्मृति सुरक्षित मिलती है, जो क्रमशः ब्रहमार्वत (सरस्वती व दृषद्वती का मध्यवर्ती क्षेत्र) ब्रह्मर्शिदेश, (कुरूक्षेत्र, मत्स्य, शूरसेन तथा पाचाल जनपद क्षेत्र) मध्यप्रदेश (उत्तर म हिमालय, दक्षिण में विन्ध्य, पश्चिम में उत्तरी राजस्थान और पूर्व में प्रयाग तक) तक था। बौद्ध साहित्य में मध्य देश का विस्तार मगध तक माना गया हैं। पाणिनी काल में हिमालय, विन्ध्या पर्वत और पश्चिम व पूर्वी समुद्रो सें घिरे विशाल भूखण्ड को आर्यवर्त संज्ञा दी गयी। बौद्ध निकायों में दक्षिणापथ, कलिग, दन्तपुर भरूकच्छ, अष्मक, सोवीर आदि क्षेत्रों का उल्लेख हुआ हैं।[9] पाणिनी के नन्दयुगीन भाष्यकार कात्यायन समस्त भारत से परिचित थे। उन्होने अपनी कृति में सुदूरदक्षिण के पाण्ड्यों और चोलो का उल्लेख किया है।[10] चतुर्थ शताब्दी ई0पू0 के अन्त में अखिल भारतीय मौर्य साम्रज्य की स्थापना, अशोक के शिलालेखों की समस्त भारत में उपलब्धता तथा इनमें सुदूर दक्षिणी राज्यों का नामोलेख स्पष्ट करता है कि मौर्य काल तक भारतीयों को समस्त देश के भूगोल का ज्ञान हो गया था। फलतः परवर्ती युगों में भारतवर्ष की यह परिभाषा सर्वमान्य हो गयी –

''आहिमवत आकुमार्या भारतवर्षम अर्थात हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक विस्तृत भौगोलिक इकाई को भारतवर्ष कहते है।''[11]

मौर्योत्तर एवं कुषाण कालों में भारतीयों को अखिल भारतीय भौगोलिक चेतना सुस्पष्ट और गहनतर हो जाती है। महाभाष्य में केरल अथवा मालाबार तक का उल्लेख है। चौथी शाताब्दी ई0 तक रचित रामायण एवं महाभारत महाकाव्यों में उत्तर भारत के भूगोल के साथ–साथ दक्षिण भारत के भूगोल का भी विस्तृत परिचय मिलता है। रामायण के किष्किन्धाकाण्ड में सुग्रीव का भौगोलिक ज्ञान तथा महाभारत के सभा पर्व में सहदेव की विजय यात्रा में पाण्ड्यों, द्रविडों, आन्ध्रों और केरलों के पराजित किए जाने का उल्लेख हैं। भीष्मपर्व में उत्तर की 157 जातियों का एवं हिमालय के दक्षिण की 50 जातियों का उल्लेख हुआ हैं।[12]

वायुपुराण में भारत के भौगोलिक विस्तार एवं एक भौगोलिक इकाई के रूप में उसकें अस्तित्व को स्पष्ट रूप से व्यक्त किया गया है। वायु पुराण के अनुसार समुद्र के उत्तर एवं हिमालय के दक्षिण में स्थित भू–भाग का नाम भारत है और उसमें निवास करने वाली प्रजा भारती हैं। इसमें भारत के पूर्व में किरातों (उत्तर पूर्व की जनजातियों) एवं पश्चिम में यवनों (बैक्ट्रिया के यवनों) की स्थिति बतायी गयी है। कन्याकुमारी सें गंगा के स्त्रोत तक भारत भूमि का विस्तार बताया गया है।[13] स्पष्ट है कि प्रथम शताब्दी ई.पू. तक भारत के विस्तार की यह कल्पना अस्तित्व में आ चुकी थी।

मत्स्य, वायु, ब्रह्माण्ड, कूर्म, विष्णु और वराह आदि पुराणों के भुवनकोष नामक अध्यायों में और महाभारत के भीष्मपर्व में भारत कें पर्वतों और नदियों का विस्तार से उल्लेख हुआ है। पुराणों के विवरणा से ज्ञान होता है कि भारतवासी मेरू पर्वत (पामीर) और हेमकूट (कैलाश हिमालय) को अपने देश की सीमा मानते थे। महाभारत में देश की सोमा के अन्दर अवस्थित सात पर्वतों–महेन्द्र (पूर्वी घाट की पर्वत श्रृंखला), मलय (कावेरी के दक्षिण की चोटिया), सहयाद्रि (पश्चिमी घाट की पर्वतमाला), शक्तिमान (खानदेश की पहाडिया), ऋक्ष (सतपुडा–महादेव पर्वत श्रृंखला), विन्ध्य और परियात्र (विन्ध्याचल के पश्चिमी भाग से लेकर राजपूताने की अरावली पहाडियॉ) के उल्लेख से स्पष्ट है कि भारत के भूगोल में हिमालय से लेकर सुदूर दक्षिण तक के प्रदेश सम्मिलित किए जातें थे। पर्वतों के समान ही भारत की नदियों की सूची भी पुराण और महाभारत आदि ग्रन्थों में मिलती है। महाभारत की नदी सूची में दो सौ नाम है जिनमें गान्धार की सुवास्तु सें लेकर असम की लौहित्य, उडीसा की ऋषिकुल्या और वैतरणी तथा दक्षिण की तुंगभद्रां तक सम्मिलित है। षिवपुराण में सप्तगंगा (सात नदियों) गंगा, सिन्धु, गोदावरी, कावेरी, ताम्रपर्णि, सरयू, रेवा को गिनाया गया है।[14] धर्मनिष्ठ भारतीय आज भी स्नान करते समय देश की पवित्र नदियों का आह्वान करता है–

गंगे च यमुने चैव गोदावरी सरस्वती।
नम्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन्सन्निधिं कुरू।।

देश की मोक्षदायिका नगरियों की सूची में भी उत्तर और दक्षिण दोनों भू–भागो के नगर सम्मिलित हैं जिसका नामोच्चार श्रद्धापूर्वक भारत के लोग करते है।–

अयोध्या–मथुरा–माया काषी–कांची–अवन्तिका।
पुरी द्वारावती ज्ञेया सप्तैताः मोक्षदायिका।।

प्राचीन काल में भारत की भौगोलिक एकता की भावना की श्रेष्ट अभिव्यक्ति कालिदास की रचनाओं में हुई हैं। रघुवंष के चतुर्थसर्ग में रघु अपना दिग्विजय अभियान वंग से प्रारम्भ कर उत्कल, कलिंग, दुर्दर होते हुए सुदूर दक्षिण में केरल पहुंचते है। और वहां से अपरान्त और त्रिकूट पर्वत होते हुऐ पारसीकों, वक्षुप्रदेश में हूणों और तदन्तर काम्बोज, उत्सवंसकेत और किरात इत्यादि जातियों को परास्त करतें हुए असम जा पहुचते हैं। इस प्रकार कालिदास ने रघु की दिग्विजय के अभियान के माध्यम से समस्त भारतवर्ष परिक्रमा कर डाली। कालिदास ने इन्दुमती के स्वयंवर में मगध व अंग के साथ अनूप, कलिंग और पाण्ड्य आदि जनपदों के नरेषों को निमन्त्रित करके अपने अखिल भारतीय दृष्टिकोण का परिचय दिया हैं। इसी प्रकार राम के लंका से प्रत्यागमन और मेघदूत में मेघ की रामगिरि से कैलाश तक कि यात्रा के विवरण मे वह देश के विभित्र भू–भागों से प्रगाढ परिचय और स्नेह का परिचय देते है।[15]

समस्त भारतीय जनमानस में भारत को एक राष्ट्र के रूप में अभिव्यक्त करने एवं भावनात्मक एकता को बनाये रखने में भारतभूमि की भौगोलिक एकता के साथ साथ यहां के धर्म, भाषा, संस्कृति, दर्शन, साहित्य, आचार– विचार, रीति –रिवाज, कला, परम्परा आदि की समरूपता का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। य़द्यपि भारतीय संस्कृति का मूल आधार वैदिक संस्कृति रही है। इतिहास के दीर्घकालीन समय प्रवाह में वैदिक संस्कृति का आर्येत्तर एंव दक्षिण भारत की द्रविडोय संस्कृतियों के साथ सम्पर्क एंव समन्वय ने भारतीय संस्कृति को व्यापक एवं अधिक सर्वस्वीकृत आधार प्रदान किया।

हमारी परम्परा से प्राप्त सनातन धर्म, आधार ग्रन्थ आप्त पुरूष तथा सांस्कृति अनुष्ठान थोडी स्थानीय मित्रता के साथ हिमालय से कन्याकुमारी तथा सौराष्ट्र से प्रागज्योतिषपुर तक मान्य है। रामायण एवं मिल परम्परा से भी उत्तर एवं दक्षिण भारत की एकता प्रमाणित होती है। तदनुसार तमिल नरेश देश के संस्कृतीकरण का कार्य ऋषि अगस्त्य द्वारा किया गया। चेर देश में आर्य संस्कृति का प्रसार परशुराम के समय तक हो चुका था। केरल में प्रचलित जनश्रुति के अनुसार केरल एवं कोंकण की भूमि को समुद्र से निकालने का काम परषुराम ने किया था। अगस्त्य के समय से दक्षिण और उत्तर दोनों ही भागों के लोग एक ही धर्म एवं संस्कृति को मानते आए है।

प्राचीन भारतवर्ष में संस्कृत सम्पूर्ण देश की साहित्य की प्रमुख भाषा के रूप में मान्य थी। यद्यपि संस्कृत भाषा का उदय एवं विस्तार उत्तर भारतीय वैदिक ऋषि मुनियों एवं विद्वानों द्वारा किया गया लेकिन यह शीघ्र ही दक्षिण भारत के विद्वान वर्ग की भी भाषा बन गयी। वैदिक धर्म के अनेक ग्रन्थो में से अनेक की रचना दक्षिण भारत में हुई श्रौत, गृह्य एवं धर्मसूत्र के रचियता आपस्तम्ब दक्षिणवासी थें। हाल, विज्जिका, भारवि, कुलशेखर, वासुदेव, त्रिविक्रम भट्ट,सदगुरूशिष्य, गुणाढ्य, सायणाचार्य, विष्णुचित, स्वामी, शंकराचार्य, मल्लिनाथ, पण्डित जगन्नाथ आदि दक्षिण के संस्कृत विद्वानों ने अपनी साहित्यिक–धामिक रचनाओं से दक्षिण भारत में इस भाषा का समृद्व बनाया। वेद उपनिषद, धर्मशास्त्र, स्मृति ग्रन्थ, पुराण, रामायण, महाभारत आदि धर्म ग्रन्थो, पाणिनी, पतंजलि, कालिदास अश्वघोष एवं अन्य संस्कृत कवियों लेखकों की रचनाओ, पंचतन्त्र कथाओं, नीति ग्रन्थों आदि का पठन सम्पूर्ण भारतवर्ष में होता था। तमिल परम्परा के अनुसार संस्कृत और द्रविड भाषाएं एक ही उद्गम से निसृत है। कालान्तर में दक्षिण की तमिल, कन्नड, तेलगू, मलयालम जैसी भाषाएं संस्कृत के स्पर्श से ही जागृत और विकसित होकर साहित्य भाषा के धरातल पर पहुंच सको है।[16]

प्राचीन भारत में संस्कृत के अलावा पाली, प्राकृत, अपभ्रंश भाषाओं के साथ–साथ ब्राह्मी लिपि ने भी भारत कि सांस्कृतिक एकता के निर्माण में भूमिका निभाई। पाली भाषा एवं ब्राह्मी लिपि का ज्ञान अशोक के समय उतर

भारत सहित दक्षिण भारत को भी हो चुका था। इसलिए अशोक ने दक्षिण भारत में अपने अभिलेख पाली भाषा व ब्राह्मी लिपि में उत्कीर्ण करवाये। तमिल परम्परा के अनुसार द्रविड भाषाओं की सभी लिपियां ब्राह्मी से निकली है। प्राकृत काव्य साहित्य की रचना में दक्षिणात्य कवियों का भी योगदान रहा है।

प्राचीन भारत में राष्ट्र अवधारणा के निर्माण में धर्म एवं कला का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वैदिक धर्म एवं उसके परवर्ती स्वरूप ब्राह्मण धर्म एवं उसके सम्प्रदायों शैव, वैष्णव, शाक्त, सौर आदि से सम्बन्धित देवी–देवता, धार्मिक–दार्शनिक ग्रन्थ, अनुष्ठान कर्मकाण्ड आदि पूर भारत में लगभग एक समान रहे हैं। उनसे सम्बन्धित देवप्रतिमा, मन्दिर, मठ, आश्रम, तीर्थस्थल भी पूरे राष्ट्र में अवस्थित है। प्राचीन काल से धार्मिक स्थलों की तीर्थयात्रा की परम्परा रही है। शास्त्रार्थ एवं नवीन विचारो के प्रचार हेतु सभी भागों के विद्वान सम्पूर्ण भारत भूमि में भ्रमण करते थे। नवीं शताब्दी में केरल निवासी महान दार्शनिक शंकराचार्य ने राष्ट्र की भावनात्मक एकता को सुदृढ करने एवं हिन्दू धर्म संस्कृति को व्यापक आधार प्रदान करने के लिए भारत की सुदर चार दिशाओं में चार प्रसिद्ध हिन्दू तीर्थो एवं मठों की स्थापना की। अब प्रत्येक नैष्ठिक हिन्दू के जीवन का उद्देष्य इन तीर्थो की यात्रा करना था। देश भर में फैले विभित्र तीर्थ स्थलों की यात्राओं नें भारतीयों के मन में राष्ट्र के निवासी होने की भावना का विकास किया तथा इससे विभित्र क्षेत्रों के लोगों में सामाजिक सांस्कतिक मेलजोल में वृद्वि हुई। हिन्दू देव समूह, बुद्ध–बोधिसत्वों एवं जैन तीर्थकरों की प्रतिमाएं देव प्रतिमा शास्त्र के सिद्धान्त एवं लक्षणों के अनुरूप सम्पूर्ण देश में प्रायः एक समान निर्मित की गयी। इसी प्रकार विभित्र क्षेत्रों में प्रचलित स्थापत्यीय शैलियों के अनुसार देव मन्दिरों ,स्तूप, चैत्य, गुहाओं आदि का निर्माण किया गया जिसमें प्रायः समरूपता है।

प्राचीन काल से ही भारतवासी अपने धर्म, दर्शन एवं संस्कृति की श्रेष्ठता के कारण अपनी मातृभूमि पर निरन्तर गर्व करतें थें। उत्तर भारत में रचित विष्णु पुराण के अनुसार देवता भी यहां देह धारण कर जन्म लेने के लिए लालायित रहतें थे –

गायन्ति देवाः किलगीतकानि धन्यास्तु ते भारतभूमि भागे।
स्वर्गापवर्गास्पद मार्ग भूते भवन्ति भूयः पुरूषाः सुरत्वात्।।

(विष्णु पुराण 2/3/24)

इसी प्रकार दक्षिण भारत में विरचित श्रीमद्भागवत पुराण में भी उक्त भाव को और भी अधिक विलक्षण रूप में प्रस्तुत किया हैं –

अहो अमीषां किमकारिषोभनं प्रसन्न एषा स्विदुतस्वयं हरिः।
यैर्जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे मुकुन्द सेवौपयिकं स्पृहा हि नः

(श्रीमद्भागवत 5/19/21)

वाल्मीकि रामायण में भगवान राम ने भारत को स्वर्ग से श्रेष्ठतर माना था–

नेयं स्वर्णपुरी लकां रोचते मम लक्षणः,
जननी–जन्मभूमिष्च स्वर्गादपि गरीयसी।

(वाल्मीकि रामायण)

भारत राष्ट्र की उपर्युक्त वर्णित भौगोलिक–सांस्कृतिक एकता को प्राचीन काल में राजनीति ने भी अनेक अवसरों पर सुदृढता प्रदान की। ऐतिहासिक काल में नन्दशासक महापद्मानन्द यदि पूर्णतः नहीं तो आंशिक रूप से अखिल भारतीय साम्राज्य स्थापित करने में सफल रहा। पुराणो में उसें एकछत्र, एकराट् तथा अनुंल्लघित रूप से पृथ्वी को भोगने वाला कहा गया है। जैन लेखकों ने नन्द के मंत्री द्वारा समुद्रपर्यन्त पृथ्वो जीते जाने की चर्चा की है।[17] भारत में साम्राज्य की अवधारणा चक्रवर्ती आदर्श पर आधारित थी। उत्तर वैदिक साहित्य में अनेक प्राचीन चक्रवर्ती शासकों की सूची मिलती है। पाली साहित्य में सफल जम्बूद्वीप (भारतीय उपमहाद्वीप) को एक चक्रवर्ती राजा का शासन क्षेत्र माना गया है। अंगुत्तर निकाय के अनुसार बुद्ध अपने एक पुनर्जन्म में सम्पूर्ण पृथ्वी पर शासन करने वाले चक्रवर्ती राजा थे। धर्मानुसार शासन करने वाले चक्रवर्ती राजा का आदर्श बुद्ध एवं उनके अनुयायियों के सम्मुख सदैव रहता था।[18]

अर्थशास्त्र परम्परा के विकास के साथ भारत में राजत्व की नई अवधारणा विकसित हुई और चक्रवर्ती आदर्श को ठोस आधार मिला। कौटिल्य ने चक्रवर्ती का शासन क्षेत्र हिमालय से लेकर समुद्र तक विस्तृत भूमि को बताया है। चन्द्रगुप्त मौर्य और उसके उत्तराधिकारियों का साम्राज्य राजत्व की इस नवीन अवधारणा एवं चक्रवर्ती क्षेत्र के आदर्श का व्यावहारिक रूप था। चन्द्रगुप्त मौर्य को मुद्राराक्षस में हिमालय से समुद्र तक पृथ्वी का स्वामी बताया गया है सुदूर दक्षिण प्रायद्वीप के चोल, चेर, पाण्ड्य और सतियपुत को छोडकर लगभग सम्पूर्ण भारतीय उपमहाद्वीप उसके साम्राज्य के अन्तर्गत था। अर्थशास्त्र के विवरणों से ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य ने एक सुदृढ़ केन्द्रिकृत जनकल्याणकारी शासन व्यवस्था के द्वारा एक विशाल साम्राज्य को प्रशासनिक एकता में सूत्रबद्ध किया।

सम्राट अशोक के कुछ महत्वपूर्ण कार्यों से भारत की मूलभूत एकता की भावना को बल मिला। अशोक ने ब्राह्मीलिपि को अखिल भारतीय स्तर पर प्रसारित किया और उसे लोकप्रिय बनाया। एक लिपि के प्रचार द्वारा न केवल साम्राज्यीय प्रशासन को लिखित आदेशों पर आधृत कर दृढ़ बनाया गया। अपितु देश को सांस्कृतिक एवं प्रशासनिक एकता की एक मजबूत जंजीर से भी बांधा गया। भाषात्मक विविधता वाले प्राचीन भारतीय समाज में अषोक ने अपने अभिलेखों में सुदूर पश्चिमोत्तर प्रदेशों को छोडकर अन्य सर्वत्र पाली भाषा का प्रयोग किया। उसने इसे राज भाषा का रूप दिया पाली भाषा प्रशासन और साहित्य के क्षेत्र में एकता की कडो के रूप में सम्पर्क भाषा बनी।[19] साम्राज्य में एकता की भावना राजपुरूषतन्त्र को समरूपता के कारण भी उत्पन्न हुई। अशोक के अभिलेखों से स्पष्ट है कि उसके आदेश सब प्रदेशों के लिए समान होते थे और एक ही आदेश की प्रतिलिपियां सब जगह उत्कीर्ण कराई गयी। अतः सभी प्रजाजनों के मन में यह भावना उत्पन्न होनी स्वाभाविक थी कि वे एक राज्य क समानस्तरीय नागरिक है। स्वयं सम्राट द्वारा जनपदवासियों से संपर्क रखने, राजकुमारों की गवर्नरों के रूप में नियुक्ति, धर्म महामात्र एवं राजुकों के समय–समय पर दौरे आदि इन सबसे प्रजाजन एवं प्रशासक के मध्य निरन्तर संपर्क बना रहा। सर्वधर्म समभाव एवं नैतिक आदर्शों पर आधारित अषोक की धम्मनीति ने भी विभिन्न

धर्म–सम्प्रदाय युक्त भारत राष्ट्र को भावनात्मक एकता प्रदान की। अशोक के उक्त उपायों से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से भारत की राजनीतिक सांस्कृतिक एकता की प्रवृत्तियों को बढ़ावा मिला।

सम्राट पुष्यमित्र शुंग द्वारा अश्वमेघ यज्ञ का सम्पादन कनिष्क की देवपुत्र शाहिशाहानुशाही की साम्राज्यीय उपाधि, गौतमीपुत्र सातकर्णी के लिए 'त्रिसमुद्रतोयपीतवाहनस्य' का विरूद स्पष्ट करता है कि ये शासक एक विशाल साम्राज्य के स्वामी थे। साम्राज्यीय गुप्त सम्राटों–समुद्र गुप्त, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य, कुमारगुप्त प्रथम, स्कन्दगुप्त के अधिसत्तात्मक साम्राज्य का स्वरूप लगभग अखिल भारतीय था जिसमें उनके प्रत्यक्ष शासित, अधीनस्थ सामन्त क्षेत्र एवं प्रभाव क्षेत्र सम्मिलित थे। उनकी महाराजधिराज, परमभटटारक, परमेश्वर, पराक्रमांक, विक्रमादित्य जैसी उपाधियां इसके द्योतक हैं। समुद्रगुप्त की प्रयागप्रषस्ति, महरौली प्रषस्ति लेख, स्कन्द गुप्त का जूनागढ़ अभिलेख में इन शासकों की अखिल भारतीय विजयों एवं समुद्रपर्यंत पृथ्वी के विजित करने का उल्लेख है। मन्दसोर अभिलेख में वत्सभट्टि ने कुमारगुप्त प्रथम को समुद्रपरिवृत पृथ्वी का स्वामी बताया है।[20] कालिदास ने संभवतः गुप्त सम्राटो की छवि को ध्यान में रखकर अपने ग्रंथ 'रघुवंश' में रघुवंशीय नरेशों को 'आसमुद्रक्षितीशानाम' बताते हुए उनके चक्रवर्तित्व की ओर संकेत किया है। पराक्रमी गुप्त सम्राटों के लगभग तीन शताब्दियों के सुप्रशासित सुदीर्घ शासन काल में साहित्य, विज्ञान, दर्शन, कला के क्षेत्र में हुई अभूतपूर्व प्रगति एवं पौराणिक हिंदू धर्म के अभ्युत्थान एवं विकास ने भारत को सांस्कृतिक धार्मिक दृष्टि से और भी अधिक समृद्ध किया। इस सांस्कृतिक चेतना का विस्तार गुप्तकाल में जन सामान्य तक व्याप्त हो गया।

गुप्तोत्तर काल से लेकर प्राक् तुर्क युग तक उत्तर एवं दक्षिण भारत में अनेक प्रादेशिक राज्यों का उदय हुआ। लेकिन इनके शासकों द्वारा धारण की जाने वाली उपाधियां साम्राज्यीय एवं अखिल भारतीय स्वरूप लिए होती थी। बाणभट्ट ने हर्षवर्धन को चतुस्समुद्राधिपति, सकल राज चूडामणी, महाराजधिराज परमेश्वर आदि विरूद दिए है।[21] प्रादेशिक अधिसत्ताधिपति होते हुए भी उत्तर भारतीय शासको की महत्वाकांक्षा दक्षिण में तीन समुद्रों तक राज्य विस्तार की होती थी।[22] अखिल भारतीय साम्राज्य का अधिपति होने की महत्वांकांक्षा के पीछे कदाचित् इन शासको के अवचेतना मस्तिष्क में संपर्ण भारत भूमि या राष्ट्र का स्वामी होने की इच्छा का प्रभाव था जिसका उल्लेख उनके अभिलेखों एवं प्रषंसा में रचित ग्रंथों में किया जाता था। नवीं शताब्दी के प्रतिहार कालीन राजकवि राजषेखर ने कन्याकुमारी से लेकर मानसरोवर (हिमालय) तक भारत का चक्रवर्ती क्षेत्र माना है, हिमालय में शिव एवं दक्षिणि छोर पर कन्याकुमारी (तपलीन कुमार पार्वती) का सूत्र देश की इस भीतरी एकता का प्रतीक हैं।[24]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्राचीन भारत में राष्ट्र की अवधारणा भौगोलिक एवं सांस्कृतिक होने के साथ–साथ राजनीतिक भी थी। शासक वर्ग से लेकर सामान्य जन तक भारत भूमि से परिचित थे। कुलीन एवं विद्वत वर्ग में प्रचलित भाषा, साहित्य, लिपि एवं विचारों की समरूपता ने सामाजिक एवं सांस्कृतिक गतिशीलता को निरन्तर बनाये रखा। प्राचीन काल में हिन्दू, बौद्ध एवं जैन धर्म व संस्कृति के अनुयायी भारतीयों का सामाजिक–आर्थिक–धार्मिक–सांस्कृतिक जीवन यद्यपि एक समान तो नहीं था लेकिन अधिकांषतया समरूप था। पूर्व मध्य काल में बौद्ध एवं जैन धर्म एवं उसके सम्प्रदाय विशाल एवं प्रभावित हिन्दू धर्म व संस्कृति से प्रभावित होकर एक बडो सीमा तक हिन्दूमय होने लगे। इन सभी कारकों ने भारतवासियों को भावनात्मक एवं मनौवैज्ञानिक रूप से एक दूसरे को जोडा।

यह सत्य है कि भारत बीसवीं शताब्दी में आधुनिक संदर्भ में एक राष्ट्र राज्य के रूप में अस्तित्व में आया लेकिन भारतवासियों के मन में भारत राष्ट्र की भू–सांस्कृतिक छवि प्राचीन काल से विद्यमान रही थी। विदेशो सत्ताओं से संघर्ष एवं राष्ट्र की स्वतन्त्रता प्राप्ति में इस भावना का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

सन्दर्भ सूची

1. ऋग्वेद 4/42/1
2. ऋग्वेद 10/173/1,10/173/2
3. अथर्ववेद 6/88/2
4. ऐतरेय ब्राह्राण 8/15
5. शतपथ ब्राह्राण 9/4/1.1
6. वनपर्व 211.1
7. उद्घृत गोयल, श्रीराम प्राचीन भारत, पृ. 13
8. गोयल, श्रीराम पूर्वोक्त पृ. 14
9. गोयल श्रीराम, पूर्वोक्त पृ. 30'
10. तत्रैव, पृ. 31
11. तत्रैव, पृ. 31
12. तत्रैव, पृ. 32
13. तत्रैव, पृ. 32–33
14. तत्रैव, पृ. 33
15. दिनकर, रामधारी सिंह, भारतीय संस्कृति के चार अध्याय, पृ. 38
16. रायचौधरी, हेमचन्द्र – पोलिटिकल, हिस्ट्री आव एन्षियण्ट इण्डिया, पृष्ठ 234 टिप्पणी 2 में उद्धृत
17. गोयल,श्रीराम, पूर्वोक्त, पृ. 338
18. 1तत्रैव, पृ. 568
19. सलेक्टेड इन्सक्रिपषन्स, पृ. 304
20. हर्षचरित, पृ. 52
21. द्रष्टव्य – नारायण पाल का बादल स्तम्भ लेख, एपि. इण्डिका जिल्द 2, पृ. 160, 165 श्लोक 5
22. द्रष्टव्य – राष्ट्रकूट गोविन्द तृतीय की दिग्वजयें –(1) एपि. इण्डिका, जिल्द पृ. 293–95 (2) चोल सम्राट राजेन्द्र प्रथम की सेना का उत्तर भारतीय अभियान, तिरू वालगाड एवं तिय भल्ले अभिलेख, एपि. इण्डिका जिल्द, 9 पृ. 223 से आगे।
23. गोयल, श्रीराम, पूर्वोक्त, पृ. 32